''जयशंकर प्रसाद के नाटकों में निहित राष्ट्रीय चेतना के स्वर''

'डॉ॰ ज्योत्स्ना
सहायक प्रोफेसर,
किशन लाल पब्लिक कॉलेज,
रेवाड़ी (हरियाणा)।

भारतेन्दु जैसे जागरूक साहित्य चेता के युग में साहित्य की विभिन्न विधाओं द्वारा राष्ट्रीयता का बीजारोपण हो चुका था, प्रसाद ने इसे सशक्त एवं पुष्ट रूप से आगे बढ़ाया और इसका आधार ऐतिहासिक नाटकों को बनाया। प्रसाद काल तक राष्ट्रीयता के विभिन्न पक्षों में जागरूकता आ चुकी थी, जिनको प्रसाद ने नाटकों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी। इस काल का साहित्य आशा, कर्म, जीवन, जागृति, बल ओर बलिदान की आकांक्षाओं से ओत–प्रोत है। नाटकों में राष्ट्र की दुर्बलताओं के प्रति क्षोभ और आक्रोश की भावना होते हुए भी शोषक और अत्याचारी शासन के प्रति प्रतिहिंसा अथवा उग्रता के भाव नहीं हैं। राष्ट्रीयता की वाणी सौम्य है।

स्वदेश–प्रेम राष्ट्रीयता का अनिवार्य तत्त्व है। इस काल के नाटकों में देश की भौगोलिक एकता, प्राकृतिक सुषमा तथा मातृभूमि के प्रति भक्ति की भावना अभिव्यंजित हुई है। प्रसाद के नाटकों में अनन्य देशभक्ति के उदाहरण प्राप्त होते हैं।[1] 'चन्द्रगुप्त' नाटक में देशक्ति की सबसे प्रखर ध्वनि सुनाई पड़ती है। इस नाटक में सिंहरण अलका से कहता है कि जन्मभूमि के लिए ही जीवन है।''[2] अलका देश के प्रत्येक अणु–परमाणु से अगाध ममत्व रखती है। ''मेरे देश हैं, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक–एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक–एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं।''[3]

सिकन्दर के युद्ध में घायल होने के समय सिंहरण के माध्यम से प्रसाद की देशभक्ति के अमर–स्वर फूट पड़ते हैं। डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में ''यह प्रसंग इतिहास के अनुकूल हो अथवा नहीं, परन्तु इसने इसमें देशभक्ति की बोलती हुई देशभक्ति भावना एकांत दिव्य ह। देशभक्ति का इतना शुद्ध और पवित्र रूप मैंने हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं देखा।''[4]

स्कंदगुप्त में भी अनेक स्थानों पर देशभक्ति के स्वर मुखरित हुए हैं। मानवराज बंधुवर्मा देश के हित के लिए प्राणों तक का उत्सर्ग कर देने की अभिलाशा प्रकट करता है। धातुसेन भारत के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करता है – 'वसुन्धरा का हृदय–'भारत' किस मूर्ख को प्यारा नहीं है? तुम देखते नहीं कि विश्व का सबसे ऊँचा श्रृंग इसके सिरहाने और सबसे गम्भीर तथा विशाल समुद्र इसके चरणों के नीचे है? एक से एक सुन्दर दृश्य प्रकृति ने अपने सुन्दर घर में, चित्रित कर रखा है। भारत के कल्याण के लिए मेरा सर्वस्व अर्पित है।''[5] सांस्कृतिक पुनर्जागरण के युग में अथवा राष्ट्रीय संकट के काल में गौरवपूर्ण अतीत की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। मोहनिद्रा से ग्रस्त जनसमुदाय को उद्वेलित करने तथा उसे राष्ट्रीय मानापमान का बोध कराने के साथ ही विदेशी कुप्रभाव से अपनी संस्कृति को विशुद्ध रखने के लक्ष्य से साहित्यकार स्वर्णिम अतीत की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करते हैं।

प्रसाद जैसे नाटककारों ने देखा, कि हमारा वर्तमान इतिहास ही नहीं भूत इतिहास भी विदेशी छाया में मलिन हो गया है अतः इससे उसका सच्चा स्वरूप प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने भारतीय ग्रंथों के ही आधार पर ऐतिहासिक अन्वेषण किए।''[6] प्रसाद ने बौद्ध युग, मौर्य युग और गुप्त युग– जो भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग हैं – से अपने नाटकों के विषय चुने। 'चन्द्रगुप्त' में विश्व विजय का आकांक्षी वीर सिकन्दर

भारतीय आध्यात्मवाद के सम्मुख नतमस्तक दिखाई देता है। ऋषि–दाण्डयायन भारतीय आध्यात्म ज्ञान के गौरव हैं – वह सिकन्दर के दूत से कहते हैं – ''भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास मात्र हो जाता है, उसको ये चमकीले नश्वर प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते। वह किसी बलवान की इच्छा का क्रीड़ा कुन्दुक नहीं बन सकता, तुम्हारा राजा अभी झेलम भी नहीं पार कर सका, फिर भी जगद्विजेता की उपाधि लेकर जगत को वंचित करता है।''[7] अन्य स्थानों पर भी ब्राह्मणत्व को सार्वभौम शाश्वत बुद्धि वैभव कहा गया है।''[8] इस नाटक को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व की समस्त विभीषिकाओं का समाधान लेखक को कुरूपा, अहिंसा और मैत्री में मिलता है और उसी का संदेश वह नाटक में देते प्रतीत होते हैं।''[9]

'स्कन्दगुप्त' में धातुसेन ब्राह्मण की गरिमा का कारण बताता है –''ब्राह्मण क्यों महान है? इसलिए कि वे त्याग और क्षमा की मूर्ति है। इसी के बल पर बड़े–बड़े सम्राट उनके आश्रम के निकट निरस्त होकर जाते थे और वे तपस्वी ऋत और अमृत वृत्ति से जीवन निर्वाह करते हुए सांय–प्रातः अग्निशाला में भगवान से प्रार्थना करते थे।''[10] राष्ट्रीयता के इस अभावात्मक पक्ष का प्रसाद के नाटकों में पर्याप्त और सफल चित्रण हुआ है। प्रसाद ने तत्कालीन समस्याओं, दुर्दशाओं के हृदयविदारक और मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किए हैं। प्रसाद ने इस तथ्य से अवगत कराया, कि जब तक वर्तमान दुरावस्था से देश त्राण नहीं पाता, सच्ची स्वतंत्रता तथा उन्नति का मार्ग अवरूद्ध रहेगा।

भारतेन्दुकालीन नाटकों में देश की दुर्दशा का 'भारत–दुर्दशा' आदि नाटकों में सर्वांगीएर चित्रण किया गया था। गुप्तकाल भारतीय इतिहास का सर्वश्रेष्ठ काल है। प्रसाद ने इसी पर अपनी दृष्टि जमाई और संयोग की बात है कि उस काल के राजवंशों के आंतरिक विग्रह तथा उन पर विदेशियों के आक्रमण की योजनाओं ने अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य और अंग्रेजों की गुलामी से पीड़ित भारत की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर दिया।''[11]

प्रसाद के नाटकों में सांकेतिक भाषा में विदेशी शासन की पक्षपातपूर्ण कुटिल तथा दमनकारी नीति से मुक्ति पाने की प्रेरणा दी गई है। 'स्कंदगुप्त' में राजनीति दुरावस्था का व्यापक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। मातृगृप्त हुणों के अत्याचारों से दुःखी होकर मुद्गल से कहता है – ''नहीं मुद्गल निरीह प्रजा का नाश नहीं देखा जाता। क्या इनकी उत्पत्ति का यही उद्देश्य था? क्या इनका जीवन केवल चींटियों के समान किसी की हिंसा पूर्ण करने के लिए है।''[12]

'विशाख' में राजा नरदेव ब्रिटिश शासन का प्रतीक है। इस नाटक में उस समय की परिस्थितियों का सांकेतिक रूप से वर्णन है। जब गांधी जी का, राजनीतिक मंच पर आगमन हो चुका था और जनता जलियाँवाला बाग जैसी दुर्घटनाओं से अंग्रेजों की नीयत पहचानकर अत्यन्त क्षुब्ध थी। नरदेव की रानी अन्यायी शासन से दुःखी है, वह नरदेव से आग्रह करती है – ''आपने कुपथ पर पैर रखा है और मैं आपको बचा न सकी। परिणाम बड़ा ही भयंकर होने वाला है। वह मैं नहीं देखना चाहती, किन्तु मैं कहे जाती हूँ कि अन्याय का राज्य बालू की भीत है।''[13]

विलास के चरित्र से अंग्रेजी सत्ता और उसके कुकृत्यों को प्रसाद ने देखा कि भारत की जनता को पराधीनता खल रही थी, जिसका विरोध उन्होंने प्रतीकात्मक रूप से मनोवृत्तियों के संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया। 'कामना' राजनीतिक अत्याचारों से दुःखी होकर कहती है–यदि राजकीय शासन का अर्थ हत्या और अत्याचार है, तो मैं व्यर्थ रानी बनना नहीं चाहती। मेरी प्रजा इस बर्बरता से जितना शीघ्र छुट्टी पाये उतना ही अच्छा है।[14]

'चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त और चाणक्य के संयुक्त प्रयास से मगध नन्द के अत्याचारों से मुक्ति पाता है। इस कथानक के माध्यम से देश की स्वतंत्रता तथा पीड़ा मुक्ति का वर्णन किया गया है। प्रसाद का ध्यान देश की सांस्कृतिक और राजनीतिक दुर्दशा की ओर अधिक था फिर भी आर्थिक संकट की ओर उनकी दृष्टि गई। 'स्कन्दगुप्त' में धातुसेन के कथन से विघटित अर्थ व्यवस्था का परिचय प्राप्त होता है – ''क्यों ब्राह्मण टुकड़ों के लिए अन्य लोगों की आजीविका छीन रहे हैं? क्यों एक वर्ग के लोग दूसरों की अर्थकारी वृत्तियों को ग्रहण करने लगे हैं? लोभ ने तुम्हारे धर्म का व्यवसाय चला दिया। धर्म वृक्ष के चारों ओर स्वर्ण के कांटेदार जाल फैलाए गए और व्यवसाय की ज्वाला से वह दाह्य हो रहा है। जिन धनवानों के लिए उसने धर्म को सुरक्षित रखा, उन्होंने समझा कि धर्म धन से खरीदा जा सकता है, इसीलिए धनोपार्जन मुख्य हुआ धर्म गौण।''[15]

प्रसाद जी ने राष्ट्रीय–भावना के विकास के लिए सामाजिक कुरीतियों का संस्कार करना आवश्यक समझा। इस कार्य में दक्षता दिखाई है और सामाजिक कुरीतियों तथा संकीर्णताओं का यथार्थ चित्रण कर जनता को सभ्य तथा सुशिक्षित समाज के निर्माण की प्रेरणा दी। 'अजातशत्रु' में अवर्ण और सवर्ण की समस्या उठाई गई है। रानी शक्तिमती दासी पुत्री होने के कारण अपमानित की जाती है। रानी अपने पुत्र विरूदुक के अन्तर्गत आत्म–सम्मान और क्रांति के भाव जाग्रत करती है – ''बालक! मत्र अपनी इच्छा शक्ति और पौरूष से ही सब कुछ होता है। जन्मसिद्ध तो कोई भी अधिकार दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता है। विश्वभर में छोटे से बड़ा होना यही प्रत्यक्ष नियम है।''[16]

प्रसाद ने अनेक नाटकों में विधवा स्त्रियों की समस्या भी उठाई है। उनकी दृष्टि में वैधव्य अभिशाप या अपराध नहीं था। उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया है। ध्रुवस्वामिनी में अनमेल विवाह का समर्थन किया है। रामगुप्त जैसे क्लीव राजा से प्रतिभाशालिनी ध्रुवस्वामिनी का संबंध विच्छेद कराया गया है। ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से प्रसाद ने स्त्री की स्वतंत्रता और प्रगतिशीलता का समर्थन किया है –''मै। केवल यही कहना चाहती हूँ, कि मनुष्यों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते।''[17]

ध्रुवस्वामिनी पुरोहित से कहती है – खोल हो या न हो, किन्तु एक क्लीव पति के द्वारा परित्यक्ता नारी का मृत्यु मुख में जाना ही मंगल है। उसे स्वसमयन और शांति की आवश्यकता नहीं।''[18] जहाँ उस नाटक में विवाह–विच्छेद कर पति के अयोग्य होने पर पति के जीवित होते हुए ही स्त्री को पुनर्विवाह करने की छूट दी है, वहीं 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अन्तर्जातीय विवाह को भी प्रश्रय दिया है। इससे स्पष्ट है, कि अन्तर्जातीय विवाह समाज में वर्जित था और इससे तरह–तरह के झगड़े और दंगे फसाद हुआ करते थे। दो विभिन्न जातियों में विवाह कराकर प्रसाद ने हिन्दू–मुस्लिम एकता पर ही बल दिया है।

प्रसाद के सभी नाटकों में सत् और असत् प्रवृत्तियों का संघर्ष दिखाई देता है। उनके नाटकों में आध्यात्मिक, नैतिक दृष्टि से पतित पात्र–शांतिभिक्षु, महापिंगल, प्रपंचबुद्धि, कापालिक, देवदत्त, नरदेव, रामगुप्त आदि हैं। 'विशाख' में बौद्ध धर्म की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराया गया है। 'विशाख' के मन का संकल्प विकल्प धार्मिक पतन का सफल चित्र उपस्थित करता है– ''क्यों न हो, इसी को तो आज कल धर्म कहते हैं। किसी भी प्रकार से उपार्जित धन को, धर्म में व्यय करने का अधिकार ही कहाँ है, ऐसों को धर्मात्मा कहें कि दुरात्मा। क्योंकि वे यह नहीं जानते कि दुसरों का गला काटकर कोई धर्मशाला मठ या मंदिर बना देने से उनका पाप नहीं धुल जाता।''[19]

'स्कंदगुप्त' में प्रसाद ने धातुसेन के माध्यम से तत्कालीन धार्मिक पतन का वर्णन किया है। धातुसेन ब्राह्मणों को फटकारता हुआ कहता है– लोभ ने तुम्हारे धर्म का व्यवसाय चला दिया। दक्षिणाओं की योग्यता

से–स्वर्ग पुत्र, धन, यश, विजय और मोक्ष तुम बेचने लगे, कामना से अंधी जनता के विलासी समुदाय के ढोंग के लिए तुम्हारा धर्म आवरण हो गया है। जिस धर्म के आचरण के लिए पुष्कल स्वर्ण चाहिए, वह धर्म साधारण की सम्पत्ति नहीं।''[20]

भारतेन्दु काल में राष्ट्रीयता कुछ सुधारों तक ही सीमित थी। अतः तत्कालीन साहित्य का मूल स्वर युग की व्यथा को अभिव्यंजित करना था। साथ ही उस युग के नाटककारों की दृष्टि केवल हिन्दू जाति की ओर थी, अतः तत्कालीन राष्ट्रीयता भी हिन्दू राष्ट्रीयता के नाम से ही अभिहित की जा सकती है। प्रसाद युग में राजनीति में उग्रता आने के साथ ही साथ राष्ट्रीय आन्दोलनों को अभिव्यक्ति और समर्थन मिला, क्रांति और बलिदान के स्वर गूंज उठे। सुखद भविष्य से सुन्दर स्वप्न भी संजोये जाने लगे।

प्रसाद शासन सुधार नहीं, स्वराज्य चाहते थे। इन्होंने कभी प्रत्यक्ष रूप से और कभी प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से स्वराज्य की मांग की। प्रसाद के नाटकों में स्वराज्य प्राप्ति की भावना अभिव्यक्ति मिली है। प्रसाद के हृदय में देश की पराधीनता के प्रति पीड़ा है, कसक है, वेदना है, टीस है, जो उपयुक्त अवसर पाकर, बरबर फूट पड़ी है। 'चन्द्रगुप्त' में वह कहता है – ''पराधीनता से बढ़कर विडम्बना और क्या है?[21] उनका विचार है कि ''ईश्वर ने सभी मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है।''[22] एक अन्य स्थान पर वह मातृभूमि के उपकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए देश के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्यों की स्मृति दिलाते हैं और स्वराज्य का आह्वान करते हैं।[23]

'कामना' में युवक विवेक घृणित शासन से मुक्ति पाने की तीव्र आकांक्षा प्रकट करता है – हमारे और तुम्हारे देश की सीमा में एक नया राज्य स्थापित हो गया है। वह हमारे देश के विद्रोहियों का एक घृणित संगठन है। हमने अत्याचार का ठेका ले रखा है। उससे क्या हम तुम दोनों बचना चाहते हैं।''[24] 'जनमेजय का नागयज्ञ' में नाग जाति अपनी पराधीनता से स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए कृत संकल्प है और स्वाधीनता की रक्षा अपने प्राणों के मूल्य पर भी करने को तत्पर दिखाई देती है।''[25] एक स्वतंत्र और संगठित साम्राज्य की कल्पना की है। उनके नाटकों में एक आर्यावर्त, 'एक देश' एक राष्ट्र की धारणा व्यक्त हुई है।

'राज्यश्री' में हर्षवर्द्धन राष्ट्रीय सुरक्षा और एकता के लिए अथक प्रयास करता दिखाई पड़ता है, वह पुलकेशिम से कहता है –मुझे साम्राज्य की सीमा नहीं बढ़ानी है। वसुन्धरा के शासन के लिए एक प्रवीर की आवश्यकता होती है, सो इधर दक्षिपापथ में उसका अभाव नहीं। महाराष्ट्र सुशासित वीर निवास है, मुझे उत्तरापथ के द्वारा भी रक्षा करनी है। मैं अकारण दूसरों की भूमि हड़पने वाला दस्यु नहीं हूँ। यह एक संयोग है कि कामरूप से लेकर सुराष्ट्र तक कश्मीर से लेकर रेवा तक, एक सुव्यवस्थित देश में स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। विदेशी वस्तुओं का प्रयोग अधोगति का कारण समझा गया। तिलक तथा बीसेंट का होम रूल आन्दोलन भी आलोच्य काल में ही हुआ। महात्मा गांधी ने सन् 1930 ई0 के पश्चात् दो राष्ट्रीय आन्दोलन संचालित किए असहयोग और सविनय अवज्ञा आन्दोलन। इन आन्दोलनों का लक्ष्य शीघ्र स्वराज्य प्राप्त करना था। इन सभी राष्ट्रीय आन्दोलनों की स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रसाद के नाटकों में मिलती है।

'विशाख' की नाग जाति का स्वातंत्र्य–संघर्ष के अनुरूप है और साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रेरक शक्ति भी। नागजाति संगठित होकर अत्याचारी राजा नरदेव के विरूद्ध आन्दोलन करती है और अपना लक्ष्य प्राप्त करती है। 'स्कंदगुप्त' में स्वतंत्रता तथा स्वाधिकारों की रक्षा का प्रयास दिखाई पड़ता है।''[26] सर्वनाग देश के नागरिकों को देश के नागरिकों को स्वाधिकार प्राप्त करने की प्रेरणा देता है।''[27]

नाटकों में यत्र–तत्र चर्खा और खादी का भी प्रतिपादन किया गया है। प्रसाद के 'कामना' में कृत्रिम तथा कल–मशीनों के प्रयोग की अपेक्षा प्राकृतिक तथा नैसर्गिक जीवन को श्रेष्ठ बताया गया है। 'अजातशत्रु'

में दिखाया गया है, कि राज्यपरिषद के सदस्यगण राष्ट्र कल्याणार्थ सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार है– ''राष्ट्र के कल्याण के लिए प्राण विसर्जन तक किये जा सकते हैं और हमस ब ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।''[28] चन्द्रगुप्त संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ नहीं समझता है, कि 'आत्म सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।''[29]

प्रसाद काल के अंतिम चरण तक देश के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में यह धारणा बद्धमूल हो चुकी थी कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। सम्पूर्ण देश में हलचल सी मच गई थी और नवयुवक वर्ग विशेष रूप से हिंसा और क्रांति का प्रश्रय लेकर भी स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता था। अनेक क्रांतिकारी संगठन सक्रिय हो उठे थे और अपनी इष्ट सिद्धि के लिए कोई भी साधन अपनाने के लिए तैयार थे।

प्रसाद के नाटकों में यत्र–तत्र क्रांतिकारी विचार और स्वर देखा जा सकता है। 'स्कंदगुप्त' में विजया कहती है–''सुना दो वह संगीत, जिससे पहाड़ हिल जाए और समुद्र काँप कर रह जाए, अंगड़ाईयाँ लेकर मुचुकुन्द की मोहनिद्रा से भारतवासी जाग पड़ें।''[30]

कनक स्कंदगुप्त को उत्तेजित करती है–''उठो स्कंद, आसुरी शक्तियों को नाश करो, सोने वालों को जगाओ और रोने वालों को हँसाओ। आर्यावर्त तुम्हारे साथ होगा और आर्य–पताका के नीचे समग्र विश्व होगा।''[31]

जातीय एकता पर भी प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से बल दिया। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त और यवन कन्या कार्नेलिया का विवाह सम्बन्ध स्थापित कराकर धार्मिक तथा साम्प्रदायिक एकता का ही प्रतिपादन किया है। ''जनमेजय का नागयज्ञ में सरमा सम्पूर्ण मानवता की एकता का आदर्श उपस्थित करती है – ''मैं तो एक मनुष्य जाति देखती हूँ–न दस्यु और न आर्य।''[32]

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भारतेन्दुकालीन राष्ट्रीय–भावना प्रसाद काल में आकर प्रखर और पुष्ट हो जाती है। प्रसाद के नाटकों से यह स्पष्ट है। सर्वत्र राष्ट्रीय उद्धार और उत्थान की कामना और प्रयास नाटकों में दिखाई देता है।

प्रसाद के नाटकों में एक बात सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है, कि इतिहास अब साहित्य की वस्तु बन गया। इतिहास का आश्रय ग्रहण कर देश की सांस्कृतिक आत्मा के उदार एवं परिष्कृत रूप की सफल अभिव्यक्ति प्रसाद ने की, जिससे आत्म सम्मान और राष्ट्रीय गौरव की अभिवृद्धि हुई। इनके माध्यम से समसामयिक समाज की ज्वलंत समस्याओं के समाधान की चेष्टा की गई। ये नाटक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रतिबिम्ब से प्रतीत होते हैं।

संदर्भ :

1. ब्रजरत्नदास, हिन्दी नाट्य साहित्य, पृ. 133
2. प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ. 80
3. वही, पृ. 92
4. डॉ0 नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ. 9
5. प्रसाद, 'स्कंदगुप्त', पृ. 119
6. डॉ0 नगेन्द्र, आधुनिक नाटक, पृ. 9
7. प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ. 95

8. वही, पृ. 90
9. डॉ0 शांतिस्वरूप गुप्त, प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प, पृ. 35
10. प्रसाद, स्कंदगुप्त, पृ. 123
11. डॉ0 पद्मासिंह शर्मा, कमलेश का निबंध, प्रसाद का चन्द्रगुप्त, हिन्दी नाटक के सिद्धांत और नाटक ग्रंथ में संग्रहीत, पृ. 184
12. प्रसाद, स्कंदगुप्त, पृ. 41
13. प्रसाद, विशाख, पृ. 64
14. प्रसाद, कामना, पृ. 97
15. प्रसाद, स्कंदगुप्त, पृ. 122–123
16. प्रसाद, अजातशत्रु, पृ. 56
17. प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, पृ. 25
18. प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, वाङमय, पृ. 775
19. प्रसाद, विशाल, पृ. 14
20. प्रसाद, स्कंदगुप्त, पृ. 123
21. प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ. 129
22. वही, पृ. 173
23. वही, पृ. 199
24. प्रसाद, कामना, पृ. 92
25. प्रसाद, जनमेजय का नागयज्ञ,
26. प्रसाद, स्कंदगुप्त, पृ. 52
27. वही, पृ. 11
28. प्रसाद, अजातशत्रु, पृ. 66
29. प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ. 58
30. प्रसाद, स्कंदगुप्त, पृ. 125
31. प्रसाद, स्कंदगुप्त, पृ. 130
32. प्रसाद, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ. 31